केशवदासजी की अमीघूँट

और

जीवन-चरित्र

जिसका

हर एक पद उन महात्मा के अनुपम
प्रेम व गहरे अभ्यास को लखाता
है। गूढ़ शब्दों के अर्थ व
संकेत नोट में लिख
दिये गये हैं।

—:*:—

मुद्रक व प्रकाशक
बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स,
इलाहाबाद।

[पाँचवीं बार] सन् १९७८ [मूल्य]

Printed at The Belvedere Printing Works, Allahabad, By Sheel Mohan.

जीवन-चरित्र

—:०:—

परम भक्त केशवदासजी के जीवन का हाल कुछ मालूम नहीं होता सिवाय इसके कि वह जाति के बनिया, यारी साहिब के चेले और बुल्ला साहिब के गुरुभाई थे जिनके पुनीत गुरु घराने में गुलाल साहिब, भीखा साहिब और पलटू साहिब सरीखे साध और संत प्रगट हुए। इस हिसाब से उनके जीवन का समय दर्मियान बिक्रमी संबत १७५० और १८२५ के ठहरता है।

इनका यह छोटा सा ग्रंथ कई बरस की खोज से मिला है। सचमुच जैसा कि इसका नाम (अमीघूँट) है प्रति पद उस का अमी की घूँट है और उनके अनुपम प्रेम, गहिरे अभ्यास और ऊँची गति को लखाता है॥

चौथी बार सन् १९५१
पाँचवीं बार सन् १९७९

केशवदास जी की अमीघूंट

राग मंगल

——: * :——

(१)

सतगुरु परम निधान, ज्ञानगुरु[1] तें मिलै।
पावै पद निरबान, परम गति तब दिलै[2] ॥ १ ॥
अर्थ धर्म मोच्छ काम, चारि फल होवई।
सत्त सुकृति कै अंस, साध लिये सो वई ॥ २ ॥
जेहिं निरखत मन मगन, सो दुबिधि नसावई।
अद्‌भुत रूप अबिनासि, सो घटहिं समावई ॥ ३ ॥
ओअं सब्द अलेख, लखि नरक निवारई।
जीवन मुक्ति बिदेस, पाँच पचीसहिं हारई ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

सांख्य जोग यह धर्म है, कर्म बीज को जार।
जोई था सोई हुआ, देखा सुन्न मँझार ॥ ५ ॥
अबिचल अगम अगाध, साध गति लखै न कोई।
प्रेम प्रकास बास आकासहिं, निसु दिन होई ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥

बिना सीस कर चाकरी, बिन खाँड़े संग्राम।
बिन नैनन देखत रहै, निसु दिन आठो जाम ॥ ७ ॥
प्रेम प्रीति यह रीति, जीति भ्रमहिं ढहावई।
सदा अनन्द बिनोद मिलै, अबिगत सुख पावई ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

निर्गुन राज समाज है, चँवर सिंहासन छत्र।
तेहिं चढ़ि यारी गुरु दियो, केसोहिं अजपा मंत्र ॥ ९ ॥

——: ० :——

(१) गुरु-ज्ञान। (२) दिलावै।

(२)

धनि सो घरी धनि बार, जबहिं प्रभु पाइये।
प्रगट प्रकास हजूर, दूर नहिं जाइये ।। १ ।।

।। छंद ।।

नहिं जाइ दूर हजूर साहिब, फूलि सब तन में रह्यो।
अमर अछय सदा जुगन जुग, जक्त दीपक उगि रह्यो ।।२।।
निरखि दसौं दिसि सर्ब सोभा, कोटि चंद सुहावनं।
सदा निरभय राज नित सुख, सोई केसो ध्यावनं ।।३।।
पूरन सर्ब निधान, जानि सोइ लीजिये।
निर्मल निर्गुन कंत, ताहि चित दीजिये ।।४।।

।। छंद ।।

दीजिये चित रीझि कै उत, बहुरि इतहिं न आइये।
जहँ तेज पुंज अनंत सूरज, गगन में मठ छाइये ।।५।।
लिय घट पट खोलि कै प्रभु, अगम गति तब गति करी।
बढ़ो अधिक सुहाग केसो, बीछुरत नहिं इक घरी ।।६।।
अद्भुत भेख बनाय, अलेख मनाइये।
निसु बासर करि प्रेम, तो कंठ लगाइये ।।७।।

।। छंद ।।

लाइये घट छाड़ि के मठ, उमँगि सोहं भरि रहो।
बढ़ो अधिक सुहाग सुन्दरि,[1] अलख स्वामी रमि रहो ।।८।।
मिल्यो प्रभु अनूप उदै अति, सर्ब गति जा सों भई।
आदि अंत अरु मध्य सोई, मिलि पिया केसो मई ।।९।।
फूलि रह्यो सब ठाँव, तो धरनि अकास में।
सो त्रिभुवनपति नाथ, निरखि लियो आप में ।।१०।।

।। छंद ।।

निरखि आपु अघात नाहीं, सकल सुख रस सानिये।
पिवहि अमृत सुरति भर करि, संत बिरला जानिये ।।११।।
कोटि बिस्नु अनंत ब्रह्मा, सदा सिव जेहि ध्यावहीं।
सोइ मिल्यो सहज सरूप केसो, अनंद मंगल गावहीं ।।१२।।

(१) स्त्री।

फुटकर शब्द

॥ शब्द ३ ॥

अबिनासी दूलह मन मोह्यो, जा को निगम बतावै नेत[1] ॥टेक॥
निरंकार निरअंक निरंजन, निर्बिकार निरलेस।
अगह अजोनि भवन भरि पायो, सतगुरु के उपदेस ॥ १ ॥
सुरति निरति के बाजन बाजे, चित तेतन सँग हेत।
पाँच पचीस एक सँग खेलहिं, निर्गुन के यह खेत ॥ २ ॥
सुख सागर अनुभव फल फूली, जगमग सुन्दर सेत।
नख सिख पूरि रहे दसहूँ दिसि, सब घट अबिगत जेत ॥ ३ ॥
अजर प्रकास जोति बिनु पावक, परम निरंतर देख।
अनँत भानु ससि कोटिक निर्मल, केसो आतम लेख ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४ ॥

ऐसे संत बिबेकी होरी खेलै हो, जाके गुरुमुख दृढ़ बिस्वास।
स्रवन नैन रसना मिलो है, आतम राम के पास ॥टेक॥
ईक रँग रूप बनी सब सुंदरि, सोभा बनो है ठाठ।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, तिरबेनी के घाट ॥ १ ॥
आनँद केलि होत निसु बासर, बाढ़त प्रेम हुलास।
अगर अबीर अखंड कुमकुमा, केसर सदा सुबास ॥ २ ॥
सहज सुभाव को खेल बन्यो है, फगुआ बरनि न जात।
सुरति सुहागिनि उठि उठि लागहि, अबिनासी के गात ॥ ३ ॥
लघु दीरघ मिलि चाचरि जोरी, होरी रची अकास।
पावक प्रेम सहज सों फूँक्यो, दसों दिसा परकास ॥ ४ ॥
फेंट गही छबि निरखि रही है, मंद मंद मुसुकात।
फगुवा दान दरस प्रभु दीजे, केसो जन बलि जात ॥ ५ ॥

---

(१) न इति।

॥ शब्द ५ ॥

निरमल कंत संत हम पाया, कोटि सूर जाकी निर्मल काया ॥
प्रेम बिलास अमृत रस भरिया, अनुभौ चँवर रैन दिन ढुरिया ॥
आनँद मंगल सोहं गावैं, सुख सागर प्रभु कंठ लगावैं ॥
सत्य पुरुष धुनि अति उजियारी, कोटि भानु ससि छबि पर वारी ॥
तेज पुंज निर्गुन उँजियारा, कह केसो सोइ कंत हमारा ॥

॥ शब्द ६ ॥

निरखि रूप मन सहज समाना, मैं तैं मिटि गो गर्भ पराना[1] ॥
अच्छर माहिं निअच्छर देखा, सोई सब जीवन का लेखा ॥
ऐसो भेद जो जानै कोई, ता को आवागवन न होई ॥
जैसे उग्र ऋनी कहवाया, मिटि गा रूप भेष नहिं माया[2] ॥
ऐसे निर्मल है ब्रह्मज्ञानी, सदा बखानहि अमृत बानी ॥
उदित पुरुष निरमल जेहिं काया, सोई साहिब केसो छाया[3] ॥

॥ शब्द ७ ॥

छाया काया तें प्रभु न्यारा, धरनि अकास के बाहर पारा ॥
अगम अपार निरन्तर बासी, हलै न टलै अगम अबिनासी ॥
वा कहँ अद्भुत रूप न रेखा, अगम पुरुष प्रभु सब्द अलेखा ॥
निज जन जाय तहाँ प्रभु देखा, आदि न अंत नाहिं कछु भेखा ॥
मिलि अंगम सुख सहज समाया, या बिधि केसो बिसरी काया ॥

॥ शब्द ८ ॥

पिय थारे[4] रूप भुलानी हो ।
प्रेम ठगौरी मन रह्यो, बिन दाम बिकानी हो ॥ १ ॥
भँवर कँवल रस बोधिया, सुख स्वाद बखानी हो ।
दीपक ज्ञान पतंग सों, मिलि जोति समानी हो ॥ २ ॥

---

(१) भाग गया । (२) जैसे पूनों का तेजमान चाँद राहु का कर्जदार कहलाता है और राहु उसे ग्रस लेता है वैसे ही निर्मल जीव देह धारन करके माया का ऋनी हो जाता है और वह उसे ग्रस लेती है, जब ज्ञान का प्रकाश हो तो माया और भेष सब का लोप हो जाय । (३) भरपूर है । (४) तुम्हारे ।

सिंधु भरा जल पूरना, सुख सीप समानी हो ।
स्वाँति बुंद सों हेतु है, ऊर्ध मुख लगानी हो ॥ ३ ॥
नैन स्रवन मुख नासिका, तुम अंतरजामी हो ।
तुम बिनु पलक न दीजिये, जस मीन अरु पानी हो ॥ ४ ॥
ब्यापक पूरन दसौ दिसि, परगट पहिचानी हो ।
केसो यारी गुरु मिले, आतम रति मानी हो ॥ ५ ॥

॥ शब्द ९ ॥

म्हारे हरिजू सूँ जुरलि सगाई हो ।
तन मन प्रान दान दे पिय को, सहज सरूपम पाई हो ॥ १ ॥
अरध उरध के मध्य निरंतर, सुखमन चौक पुराई हो ।
रबि ससि कुंभक अमृत भरिया, गगन मँडल मठ छाई हो ॥ २ ॥
पाँच सखी मिलि मंगल गावहिं, आनँद तूर बजाई हो ।
प्रेम तत्त दीपक उँजियारो, जगमग जोति जगाई हो ॥ ३ ॥
साध संत मिलि कियो बसीठी[1], सतगुरु लगन लगाई हो ।
दरस परस पतिबरता पिय की, सिव घर सक्ति बसाई हो ॥ ४ ॥
अमर सुहाग भाग उँजियारो, पूर्ब प्रीति प्रगटाई हो ।
रोम रोम मन रस के बसि भइ, केसो पिय मन भाई हो ॥ ५ ॥

॥ शब्द १० ॥

निर्गुन नाम निधान, करो मन आरति हो ॥टेक॥
गंगा जमुना सरसुती सुखमन घर बिसराम ।
निझर झरत अमृत रस निरमल, पीवहिं संत सुजान ॥ १ ॥
द्वादस पदुम पदारथ, मुक्ता नाम कि खान ।
चंदन चौक सरद उँजियारो, सकल बिस्व[2] को पान ॥ २ ॥
अगम अगोचर गुंजत निसु दिन, तन मन प्रान समान ।
अमर बिदेह भयो पद परसत, तिमिर मिटायो भान ॥ ३ ॥
कारज करम करै सो करता, अबिनासी निसु जान ।
औरन को अदृष्ट है केसो, सोई पुरुष पुरान ॥ ४ ॥

(१) बिचौलिया का काम । (२) संसार ।

रेख़ता

(११)

ख़ाक के गात में पाक साहिब मिल्यो,
सुनि गुरू बचन परतीत आई।
पाँच अरु तीन पच्चीस कलिमल कटे,
आप को साफ कर तुही साईं॥
सिफ़त क्या करौं सोइ अवर नहिं दूसरो,
बैन सँग बोलता आप माहीं।
सेत दरियाव जगमगित प्रभु केसवा,
मिलि गयो बुंद दरियाव माहीं॥

(१२)

स्याम के धाम में बैठि बातैं करै,
हरि-जन सोई हरि-भक्त नीता।
आदि को सोधि कै मद्ध को बाँधि कै,
अंत को छेदि रन सूर जीता॥
काम अरु क्रोध को लोभ अरु मोह को,
ज्ञान के बान सों मारि लीता।
जानि जन केसवा मानि मन में रहा,
यारी सतगुरु मिला भेद दीता॥

(१३)

सोई निज संत जिन अंत आपा लियो,
जियो जुग जुग गगन बुद्धि जागी।
प्रान आपान[१] असमान में थिर भया,
सुन्न के सिखर पर जिकिर[२] लागी॥

(१) वायु के नाम। (२) सुमिरन।

रहत घर बास बिनु स्वास का जीव है,
सक्ति मिलि सीव सों सुरति पागी।
अकह आलेख आदेख को देखिया,
पेखि केसो भयो ब्रह्म रागी॥

(१४)

गगन मगन धुनि लगन लगी, सुनत सुनत तन तृप्त भई।
जगर मगर नहिं डगर बगर[१] नहिं, रबि ससि निसु दिन भाव नहीं॥
प्रान गवन हरि पवन मवन[२] करि, मिलि सन्मुख पिय बाँह गही।
सत रति सत्त पती हम पावल, केसोदास सुहाग सही॥

(१५)

निसु बासर बस्तु बिचारु सदा, मुख साच हिये करुना[३] धन है।
अघ निग्रह संग्रह धर्म कथा, निपरिग्रह साधन को गुन है[४]॥
कह केसो भीतर जोग जगै, इत बाहर भोग मई तन है[५]।
मन हाथ भये जिन के तिन के, बन ही घर है घर ही बन है॥

कबित्त

(१६)

दौलत निसान बान धरे खुदी अभिमान,
करत न दाया काहू जीव की जगत में।
जानत है नीके यह फीको है सकल रंग,
गहे फिरै काल फंद मारै गो छिनक में।
घेरा डेरा गज बाज[६] झूठो है सकल साज,
बादि[७] हरि नाम कोऊ काज नाहिं अंत कै।
बार बार कहौं तोहि छोड़ु मान माया मोह,
केसो काहे को करै छोभ मोह काम कै॥

---

(१) राह कुराह। (२) स्वाँसा और प्रान को रोक के। (३) दया। (४) पाप को छोड़ना व धर्म को ग्रहन करना और फिर दोनों से अलग रहना यह गुन साध का है। (५) साध जन अंतर से मालिक की भक्ति जोग में लगे रहते हैं और बाहर से संसार व भोगों में लिप्त दीख पड़ते हैं। (६) घोड़ा। (७) छोड़ कर।

साखी

सुरति समानी ब्रह्म में, दुबिधा रह्यो न कोय।
केसो संभलि[1] खेत में, परे सो सँभलि होय ॥ १ ॥
सात दीप नौ खंड के, ऊपर अगम अबास।
सब्द गुरु केसो भजे, सो जन पावै बास ॥ २ ॥
आस लगें बासा मिलै, जैसी जा की आस।
इक आसा जग बास है, इक आसा हरि पास ॥ ३ ॥
आसा मनसा सब थकी, मन निज मनहिं मिलान।
ज्यों सरिता समुँदर मिली, मिटि गो आवन जान ॥ ४ ॥
जेहि घर केसो नहिं भजन, जीवन प्रान अधार।
सो घर जम का गेह है, अंत भये ते छार ॥ ५ ॥
जगजीवन घट घट बसै, करम करावन सोय।
बिन सतगुरु केसो कहै, केहि बिधि दरसन होय ॥ ६ ॥
सतगुरु मिल्यो तो का भयो, घट नहिं प्रेम प्रतीत।
अंतर कोर न भींजई, ज्यों पत्थल जल भीत ॥ ७ ॥
केसो दुबिधा डारि दे, निर्भय आतम सेव।
प्रान पुरुष घट घट बसै, सब महँ सब्द अभेव ॥ ८ ॥
पंच तत्त गुन तीन के, पिंजर गढ़े अनंत।
मन पंछी सो एक है, पारब्रह्म को अतंत[2] ॥ ९ ॥
ऐसो संत कोइ जानि है, सत्त सब्द सुनि लेह।
केसो हरि सों मिलि रहो, नेवछावर करि देंह ॥१०॥
भजन भलो भगवान को, और भजन सब धंध।
तन सरवर[3] मन हंस है, केसो पूरन चंद ॥११॥

(१) साँभर निमक। (२) अत्यंत, बहुत। (३) तालाब।